GAP भाषा

A MULTILINGUAL JOURNAL OF RESEARCH

(ISSN – 2582-8770)

Globally peer-reviewed and open access journal.

जयशंकर प्रसाद की कहानियों में युगबोध

अनीता पटेल

सहा. प्राध्यापक, हिंदी विभाग

एम. एन. कालेज, विसनगर (गुजरात)

मो.- 9098097263

ईमेल- anitapateliksvv@gmail.com

"साहित्यकार पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर अपने समय के समाज का तटस्थ भाव से नाड़ी-परीक्षण करे और अपनी रचनाओं में समाज का दर्पण बनने की क्षमता ही नहीं लाए, अपितु उसे समाज को आईना दिखाने की क्षमता से भी विभूषित करे। जरूरी है कि साहित्यकार अपने समय की चुनौतियों को जाने, समझे, उनका विश्लेषण करें और अपनी रचना के माध्यम से पाठक को उन चुनौतियों का मुकाबला करने की प्रेरणा देते हुए उसे अपने विवेकानुसार दिशा-संकेत भी दें।"[1]

आधुनिक हिंदी कविता के सुमेरू और छायावादी कविता के प्रधान स्तम्भ माने जाने वाले जयशंकर प्रसाद के गद्य रचनाओं में भी तत्कालीन युगबोध की अभिव्यक्ति हुई है। यद्यपि प्रसाद रोमैंटिक और भावुक रचनाकार माने जाते हैं तथापि उन्होंने अतीत के माध्यम से वर्तमान को ही चित्रित किया है। प्रसाद की रचनात्मकता उस दौर की है, जब विवेकानंद जैसे संत ऐतिहासिक-सांस्कृतिक बोध के द्वारा समाज में चेतना के प्रसार का बिगुल बजा चुके थे। आलोचक बच्चन सिंह के अनुसार प्रसाद की कहानियों में छायावादी तत्व उसी प्रकार मिलते हैं, जिस प्रकार उनके काव्य में दिखाई पड़ते हैं। यह बात सत्य है कि प्रसाद की प्रारम्भिक कहानियों में छायावादी तत्वों की प्रधानता दिखाई देती है किन्तु सभी कहानियों के संदर्भ में यह बात नहीं कही जा सकती। प्रसाद की कहानियों में भावुकता और अंतःसंघर्ष की प्रधानता है किन्तु कई कहानियों में उस युग की हलचलों और आघातों की गूँज भी है। परतंत्रता से मुक्ति की आकांक्षा, अनिश्चित वर्तमान और पीछे छूटता हुआ अतीत गौरव यह सिर्फ उस समय के साहित्य की ही नहीं बल्कि सामाजिक समस्या भी थी, जिसे आमजन भी महसूस कर रहा था। उस समय सामाजिक-धार्मिक रूढ़ियों, शोषण और पश्चिमी अंधानुकरण के विरुद्ध लोगों में एक प्रकार की चेतना का भी उदय होने लगा था, इन सब प्रतिक्रियाओं को प्रसाद भी महसूस कर रहे थे, जिसका प्रतिफलन उनकी बाद की कहानियों में दिखाई देता है। इस संदर्भ में वरिष्ठ साहित्यकार रमेश चन्द्र शाह का यह कथन महत्वपूर्ण है कि "हिंदी कहानी में यथार्थवाद की नींव प्रसाद ने ही डाली थी।"[2]

जयशंकर प्रसाद के कुल पाँच कहानी संग्रह प्रकाशित हुए, जिनके नाम हैं- 'छाया' (1912), 'प्रतिध्वनि' (1926), 'आकाशदीप' (1929), 'आँधी' (1929) तथा 'इन्द्रजाल' (1936)। इन संग्रहों में कुल 70 कहानियाँ संकलित हैं जो ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, रोमैंटिक, भावात्मक, प्रतीकात्मक और यथार्थवादी श्रेणी के अंतर्गत विभाजित की जा सकती हैं। 'छाया' और 'प्रतिध्वनि' संग्रह की कहानियाँ प्रारम्भिक दौर की होने कारण साधारण कोटि की हैं परन्तु बाद की कहानियों में प्रौढ़ता आ गयी थी। 'आँधी' और 'इन्द्रजाल' संग्रह की कहानियों में प्रसाद का दृष्टिकोण मनोवैज्ञानिक, बौद्धिक और यथार्थवादी हो चला था। प्रसाद की कहानी-कला का विवेचन करते हुए डॉ. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने कहा है -"उनमें कहानी 'कला' की वस्तु बन गयी है- संवेदनशीलता के विचार से भी और रचनात्मक प्रक्रिया के आधार पर भी। जितने भी तत्व और अंग हैं कहानी के, उन सबका पूर्ण परिष्कार 'प्रसाद' में दिखाई पड़ता है। उन्होंने हृदय को झंकृत करने की चेष्टा अधिक की है, मस्तिष्क को उदबुद्ध करने की ओर अधिक नहीं बढ़े और यही उनकी प्रकृति के सर्वथा अनुकूल भी था।"[3]

जयशंकर प्रसाद ने अपनी कहानियों में देव परंपरा से हटकर सामान्य मानव को नायक के रूप में प्रतिष्ठित किया और उनमें प्रेम और करुणा इन दो मानवीय मूल्यों को सर्वाधिक प्रश्रय दिया। उस समय देश गुलाम था और सभी रचनाकार अपनी रचनाओं के माध्यम से लागों मे राष्ट्रीयता एवं देशप्रेम की चेतना का संचार कर रहे थे। प्रसाद

की कहानियों में भी जीवन मूल्यों के समर्थन एवं राष्ट्रीयता की अनुगूँज सुनाई देती है। इस दृष्टि से प्रसाद की 'पुरस्कार' एवं 'गुंडा' कहानी विशेष उल्लेखनीय है। 'पुरस्कार' कहानी की नायिका मधूलिका देश की रक्षा के लिए अपने व्यक्तिगत प्रेम का बलिदान करती हैं क्योंकि राष्ट्रहित व्यक्तिगत प्रेम की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण है। जिस रात्रि अरुण श्रावस्ती दुर्ग पर आक्रमण करने वाला रहता है मधूलिका के मन मे भीषण अंतःसंघर्ष चलता है - "वह भयभीत थी, पहला भय उसे अरुण के लिए उत्पन्न हुआ, यदि वह सफल न हुआ तो ? फिर सहसा सोचने लगी -वह क्यों सफल हो ? श्रावस्ती दुर्ग एक विदेशी के अधिकार में क्यों चला जाए ? मगध का चिर शत्रु! ओह उसकी विजय ! कौशल नरेश ने क्या कहा था -'सिंहमित्र की कन्या!' सिंहमित्र, कोशल का रक्षक वीर, उसी की कन्या आज क्या करने जा रही है ? नहीं, नहीं मधूलिका।"[4]

इसी प्रकार 'गुंडा' कहानी जो कि 16 अगस्त सन् 1781 की काशी की ऐतिहासिक यथार्थ घटना पर आधारित है। इसका नायक नन्हकू सिंह काशी की राजमाता पन्ना और उनके पुत्र राजा चैत सिंह को अंग्रेजों की कैद से बचाने के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देता है यद्यपि इस सारे कार्य के केन्द्र में नन्हकू सिंह का राजमाता पन्ना के प्रति एकान्तिक एवं एकनिष्ठ प्रेम का भाव भी विद्यमान है, जो उसके आत्मगौरव के साथ प्रेम की दिव्यता को भी उभारता है। इस कहानी के माध्यम से 18वीं सदी की काशी में अंग्रजों के अत्याचार व शोषण से जो अराजकता तथा उथल-पुथल का माहौल है, उसका भी सजीव चित्रण दिखाई देता है। वास्तविकता यह है कि अंग्रेजी राज में जिसे गुंडा कहा गया, वह काशी के आम लोगों के लिए किसी नायक से कम नहीं। व्यक्तिगत प्रेम और देशप्रेम नन्हकू सिंह में एक स्तर पर मिल जाते हैं और वह आत्मदान करके राजपरिवार को मुक्त कराता है। कहानी के अंत में नन्हकू सिंह ललकार कर कहता है- "आप क्या देखते हैं ? उतरिए डोंगी पर! - उसके घावों से रक्त के फुहारे छूट रहे थे। उधर फाटक से तिलंगे भीतर आने लगे थे। चैत सिंह ने खिड़की से उतरते हुए देखा कि बीसों तिलंगों की संगीनों में वह अविचल खड़ा होकर तलवार चला रहा है। नन्हकू सिंह के चट्टान सदृश शरीर से गैरिक की तरह रक्त की धारा बह रही है। गुंडे का एक-एक अंग कटकर वहीं गिरने लगा। वह काशी का गुंडा था।"[5]

प्रसाद की कहानियों में ऐतिहासिकता के साथ-साथ युगीन सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तनों के संकेत भी दिखाई देते हैं। प्रसाद जिस समय लिख रहे थे, उस समय कांग्रेस का विभाजन नरम और गरम दल में हो चुका था, आजाद, भगत सिंह जैस क्रांतिकारी युवा भी सक्रिय थे। नरम की अपेक्षा गरम दल की ओर संभवतः प्रसाद का झुकाव अधिक था, इसका संकेत उनकी कहानी 'स्वर्ग का खंडहर' में दिखाई देता है। इस कहानी के माध्यम से वे पृथ्वी की स्वाभाविकता को बरकरार रखते हुए, पृथ्वी को स्वर्ग बनाने के साथ-साथ गाँधी के अहिंसावाद तथा धार्मिक निष्क्रियता का भी विरोध करते नजर आते हैं। कहानी का पात्र देवपाल कहता है- "प्राणी-धर्म में मेरा अखंड विश्वास है। अपनी रक्षा करने के लिए, अपने प्रतिशोध के लिए जो स्वाभाविक जीवन तत्व के सिद्धांत की अवहेलना करके चुप बैठता है, उसे मृतक, कायर, सजीवताविहीन, हड्डी-मांस के टुकड़े के अतिरिक्त मैं कुछ नहीं समझता।"[6]

प्रसाद की कहानियों में आभिजात्य वर्ग के पात्रों के साथ-साथ निम्न वर्ग के पात्रों को भी स्थान मिला है। इनकी कहानियों में दलित विमर्श भी है, नारी विमर्श भी है, रूढ़ियों का खंडन भी है और परिवर्तन की आहटें भी हैं। 'विराम-चिन्ह' कहानी में अछूत माने जाने वाले निम्न वर्ग के लोगों का मंदिर में प्रवेश सम्बन्धी समस्या पर आधरित है। सामाजिक परिवर्तन के उस दौर में गाँधी जी के अछूतोद्धार आंदोलन का प्रभाव भी इस कहानी में देखने को मिलता हैं। निम्न समझी जाने वाली जातियों में प्राणि मात्र के समानता की चेतना का संकेत कहानी के पात्र राधे के माध्यम से सामने आता है, "अकेले-अकेले बैठकर भोग प्रसाद खाते-खाते बच्चू लोगों को चरबी चढ़ गई है। दरशन नहीं रे- तेरा भात छीनकर खाऊँगा। देखूंगा, कौन रोकता है- राधे गुर्राने लगा।"[7]

नारी के प्रति नवीन दृष्टिकोण का परिचय छायावाद की एक प्रमुख विशेषता थी, जिसका समावेश प्रसाद की कहानियों में भी देखने को मिलता है। अपनी स्थिति के प्रति जागरुकता और नवीन चेतना प्रसाद के नारी पात्रों को विशिष्टता प्रदान करती है। स्त्री-सुधार आंदोलन उस समय शुरू हो चुके थे, ऐसे में पुरुषों की दोहरी मानसिकता को उजागर करने का कार्य साहित्य लेखन के माध्यम से किया जा रहा था। प्रसाद की 'दुखिया' में स्त्री

के प्रति पुरुष सतात्मक क्रूर नजरिए का संकेत किया गया है। दुखिया के काम पर देर से आने का कारण बताने के बाद भी दुष्ट नजीब खाँ उससे बहुत ही बदतमीजी से बात करते हुए कहता है- "मारे जवानी के तेरा मिजाज ही नहीं मिलता ! कल से तेरी नौकरी बंद कर दी जाएगी। इतनी देर ?"[8]

प्रसाद उन्मुक्त प्रेम के पक्षधर थे, विवाह संस्था के बहुत अधिक हिमायती नहीं थे। प्रसाद नारी मन के सूक्ष्म मनोभावो को पकड़ने में सिद्धहस्त थे और इसका प्रमाण बेला, विलासिनी जैसी उनकी नारी पात्र हैं। 'इन्द्रजाल' कहानी में कंजरांे के सहज जीवन का वर्णन किया गया है। भूरा की पत्नी बनकर, ठाकुर की क्रीत प्रेमिका बनकर भी बेला का एकनिष्ठ प्रेम गोली के प्रति बरकरार रहता है। इसी प्रकार 'चूड़ीवाली' कहानी में वेश्या विलासिनी है जो अपने व्यवसाय के विपरीत कुलवधू बनने और दाम्पत्य-सुख का स्वप्न एक साधारण नारी के समान अपने मन में बसाती है तथा जमींदार विजयकृष्ण के प्रति एकनिष्ठ भाव से प्रेम रखती है और उनके ठुकराने के बाद भी हिन्दू गृहिणी के समान संयम से जीवन व्यतीत करती है।

'व्रतभंग' कहानी में प्रसाद एक साथ कई समस्याओं को उजागर करते हैं, एक तरफ वे राधा के द्वारा नारी अधिकार की आवाज बुलंद करते हैं तो दूसरी ओर स्वार्थप्रेरित धार्मिक कर्मकाण्ड का खंडन करते हैं तथा कहानी के अंत में मानव सेवा की प्रेरणा भी देते हैं। कलश द्वारा जब अपनी पुत्रवधू राधा को साधु के प्रति कठोर वचन बोलने पर घर से निकल जाने को कहता है तो राधा इसका विरोध करते हुए कहती है- "मैं धनकुबेर की क्रीत दासी नहीं हूँ। मेरे गृहिणीत्व का अधिकार केवल मेरा पदस्खलन ही छीन सकता है। मुझे विश्वास है, मैं अपने आचरण से अब तक इस पद की स्वामिनी हूँ। कोई भी मुझे इस पद से वंचित नहीं कर सकता।"[9] राधा की यह दृढ़ता और स्वाभिमान की भावना आगे चलकर प्रसाद के नाटक ध्रुवस्वामिनी में भी दिखाई पड़ता है।

"हर रचना अपने समय की सीमा में सीमित होती है। वह अपने समय के मनुष्य की इच्छाओं, उसके विचारों, अनुभवों और उसकी आकांक्षाओं को व्यक्त करती है। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि वह अपने समय की सीमाओं में एकदम कैद होती है। दरअसल वह समाज का केवल दर्पण नहीं होती बल्कि युग की चेतना को नियंत्रित-संचालित भी करती है। रचना में समकालीनता से आगे की चेतना कितनी है ? यह उसका एक महत्वपूर्ण पक्ष है।"[10] इस संदर्भ में अगर प्रसाद की कहानियों को देखा जाए तो यह स्पष्ट होता है कि उनमें युगीन बोध पूर्णतया समाहित है, जो अपने समय के लोगों के यथार्थ को ही प्रतिबिम्बित करता है। सामाजिक विषमता के मूल में आर्थिक पराधीनता ही प्रमुख है जो मानव-मानव के बीच की दूरी को बढ़ा देता है और मानव द्वारा मानव के शोषण का निमित्त बनता है। अर्थाभाव, गरीबी, बेरोजगारी जैसी समस्याएँ 'मधुआ' और 'छोटा जादूगर' जैसे छोटे-छोटे बच्चों के बचपन को असमय समाप्त कर, जिम्मेदारी तथा जीवनयापन के बोझ तले उन्हें दबा देती हैं और आज के समय में यह समस्या कम विकट नहीं है। प्रसाद के 'छोटा जादूगर' कहानी के लड़के का यह कथन इस तथ्य को उजागर करने के लिए पर्याप्त है- "तमाशा देखने नहीं दिखाने निकला हूँ। कुछ पैसे ले जाऊँगा, तो माँ को पथ्य दूँगा। मुझे शरबत न पिलाकर आपने मेरा खेल देखकर मुझे कुछ दे दिया होता, तो मुझे अधिक प्रसन्नता होती।"[11]

प्रसाद की 'मधुआ' कहानी जो कि प्रेमचंद को अत्यंत प्रिय थी, उसमें एक प्रकार की अभावमयी वेदना की कसक है तो दूसरी तरफ आने वाले परिवर्तन का भी संकेत है। ठाकुर के घर का छोटा नौकर मधुआ रोते हुए शराबी को बताता है, "मार तो रोज खाता हूँ। आज तो खाना ही नहीं मिला।"[12] शराबी की सहानुभूति और संवेदना मधुआ के प्रति जाग्रत होती है और वह ठाकुर का मनोरंजन करने वाला कार्य छोड़कर, अपना पुराना सान चढ़ाने का कार्य फिर से करने का निर्णय करता है ताकि उन दोनों का जीवनयापन हो सके।

इसी प्रकार प्रसाद की एक छोटी सी कहानी 'पत्थर की पुकार' भी आर्थिक विषमता तथा अमीरों के दिखावे पर आधारित है। अमीर व्यक्ति अपने को सहृदय मानते हुए निर्जीव पत्थर तक के क्रंदन को तो सुनने का दावा रखते हैं किन्तु जीवित मनुष्यों के अभावों को देखकर भी अनदेखा कर देते हैं। गरीब शिल्पी विमल की कठोर वाणी को सुनकर कहता है- "आप लोग अमीर आदमी हैं। अपने कोमल श्रवणेंद्रियों से पत्थर का रोना, लहरों का संगीत, पवन

की हँसी इत्यादि कितनी सूक्ष्म बातें सुन लेते हैं और उसकी पुकार में दत्तचित्त हो जाते हैं। करुणा से पुलकित होते हैं, किन्तु क्या कभी दुखी हृदय के नीरव क्रंदन को भी अंतरात्मा की श्रवणेंद्रियों को सुनने देते हैं, जो करुणा का काल्पनिक नहीं किन्तु वास्तविक रूप है ?"[13]

इन कहानियों के अतिरिक्त प्रसाद की नीरा, घीसू, दुखिया, बिसाती, बेड़ी आदि कहानियों के केन्द्र में भी आर्थिक अभावों से उपजी समस्याएँ एवं मानवीय विवशता है। प्रसाद की दृष्टि सुधारवादी कम और संकेतवादी अधिक है इसीलिए उनकी अधिकांश कहानियाँ हमारे सामने कोई निष्कर्ष लाने के बजाय सवाल खड़ा करती हैं और हमें सोचने पर मजबूर करती है। प्रेमचंद की तरह प्रसाद की कहानियाँ भी भावुकता से यथार्थोन्मुखता की ओर अग्रसर दिखाई देती हैं, जिसमें तत्कालीन युग की चेतना और कठोर वास्तविकता के चित्र समाहित हैं।

संदर्भ

1. डॉ. नरेश. भारतीय भाषाएँ और साहित्य. नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन, सं.-2016. पृ-11.
2. संपा. वाजपेयी, अशोक. पूर्वाग्रह (संपादकीय) अंक-98-99. मई-अगस्त 1990. भोपालः भारत भवन
3. तिवारी, रामचंद्र. हिंदी का गद्य साहित्य. वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन, सं.-2014. पृ-566.
4. प्रसाद, जयशंकर. प्रतिनिधि कहानियाँ. नयी दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, सं.-1988. पृ-108
5. वही, पृ.-153-154.
6. वही, पृ-45-46.
7. वही, पृ-156.
8. वही, पृ-21.
9. वही, पृ-114.
10. प्रसाद, विश्वनाथ. रचना के सरोकार. नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन, सं.-1987. पृ-144.
11. प्रसाद, जयशंकर. प्रतिनिधि कहानियाँ. नयी दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, सं.-1988. पृ-139.
12. वही, पृ-91.
13. वही, पृ-18.